भारतीय शिल्पकला के विकास में जैन शिल्पकला का योगदान

डा० शिवकुमार नामदेव

भारत की प्राच्य संस्कृति के लिए जहाँ जैन साहित्य का अध्ययन आवश्यक है, वहीं जैन कला के अध्ययन का भी कुछ कम महत्त्व नहीं है। जैन कला अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताओं के कारण भारतीय कला में अपना विशिष्ट महत्व रखती है। जैन धर्म की स्वर्णिम-गौरव-गरिमा की प्रतीक प्रतिमाएँ, पुरातन मंदिर, विशाल स्तंभादि प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के ज्वलंत निदर्शन हैं। अतीत इनमें अंतर्निहित है। सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा एवं अभिवृद्धि में साहित्यकार जहाँ लेखनी के माध्यम से समाज में अपने भावों को व्यक्त करता हैं, वहीं कलाकार पार्थिव उपादानों के माध्यम द्वारा आत्मस्थ भावों को अपनी सधी हुई छैनी से व्यक्त करता है।

मूर्तिकला के क्षेत्र में जैनकला ने अर्हन्तों की अगणित कायोत्सर्ग एवं पद्मासन ध्यान मग्न मूर्तियों का निर्माण किया है जो पाषाण से लेकर मूंगा, हीरा, पुखराज, नीलम आदि से निर्मित है। मामूली ताँबा, पीतल से लेकर रजत, स्वर्ण जैसी बहुमूल्य धातुओं से निर्मित आकार में छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी जैन धर्म की इन प्रतिमाओं में कितनी ही तो चतुर्मुख एवं कितनी ही सर्वतोभद्र हैं। जैन पुरातत्व की प्रमुख वस्तु प्रतिमा है। भारत के विभिन्न भूभागों में जैन मूर्तियों की उपलब्धि होती रहती है, जिनकी मौलिक मुद्रा एक होते हुए भी परिकर में प्रांतीय प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। मुखाकृति पर भी असर होता है।

जैन मत में मूर्तिपूजा की प्राचीनता एवं विकास का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है।[1] जैन मत दो प्रमुख पंथों श्वेतांबर एवं दिगम्बर में विभाजित है। श्वेतांबर सदैव ही अपनी प्रतिमाओं को वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित रखते थे। ये पुष्पादि द्रव्यों का प्रयोग करते हैं तथा अपने देवालयों में दीपक भी नहीं जलाते। दिगम्बर मूर्तियाँ नग्न रहतीं थीं।

---

1. जैन मत में मूर्ति पूजा की प्राचीनता एवं विकास—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत, मई 1974।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत की प्राचीनतम मूर्तियाँ सिन्धु घाटी में मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा आदि स्थलों के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। इस सभ्यता में प्राप्त मोहन जोदड़ो के पशुपति को यदि शैव धर्म को देव मानें तो हड़प्पा से प्राप्त नग्न धड़ को दिगम्बर की खंडित मूर्ति मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[2]

सिन्धु सभ्यता के पशुओं में एक विशाल स्कंध-युक्त वृषभ तथा एक जटाजूटधारी का अंकन है। वृषभ तथा एक जटाजूट के कारण इसे प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ का अनुमान कर सकते हैं।[3] हड़प्पा से प्राप्त मुद्रा क्रमांक 300, 317 एवं 318 में अंकित प्रतिमा अजानुलंबित, बाहुद्वय सहित कायोत्सर्ग मुद्रा में है।[4] हड़प्पा के अतिरिक्त उपरोक्त साक्ष्य हमें मोहन-जोदड़ो में भी उपलब्ध होता है।[5]

मथुरा एवं उदयगिरि-खण्डगिरि का पुरातत्व भी जिन मूर्तियों के प्राचीन आस्तित्व को सिद्ध करते हैं। जैन स्तूप पर मूर्तियाँ अंकित रहती थीं। ईसा की पहली शताब्दी में मथुरा में वह प्राचीन स्तूप विद्यमान था जो इस काल में देव-निर्मित समझा जाता था और जिसे बुल्हर तथा स्मिथ ने भगवान पार्श्वनाथ के काल का बताया था।

भारतीय कला का क्रमबद्ध इतिहास मौर्यकाल से प्राप्त होता है। मौर्यकाल में मगध जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था। इस काल की तीर्थंकर की एक प्रतिमा लोहानीपुर से प्राप्त हुई है।[6] मूर्ति के हाथ एवं मस्तक टूट गये हैं। पैर भी जंघा के पास से नहीं हैं। प्रतिमा पर मौर्यकालीन उत्तम पालिश है। तंग वक्षस्थल तथा क्षीण शरीर जैनों के तपस्यारत शरीर का उत्तम नमूना है। पीठ प्राय. चौरस है, पीछे से काठ से प्रतीत होती है। यह प्रतिमा किसी ताख में रखकर पूजार्थ प्रयुक्त की जाती रही होगी। पार्श्वनाथ की एक कांस्य मूर्ति जो मौर्यकाल की मानी जाती है, कायोत्सर्गासन में है। यह प्रतिमा बम्बई के संग्रहालय में संरक्षित है।

शुंगकाल (185 ई. पू. से 72 ई. पू.) में जैन धर्म के अस्तित्व की द्योतक कतिपय प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। लखनऊ संग्रहालय[7] में संरक्षित शुंगयुगीन मथुरा से प्राप्त एक कपाट पर ऋषभदेव के सम्मुख अप्सरा नीलांजना का नृत्य चित्रित है। कपाट में अनेक नरेशों सहित ऋषभदेव को बैठे हुए दिखाया गया है, नर्तकी का दक्षिण पैर नृत्य मुद्रा में उठा हुआ है तथा दक्षिण हाथ भी नृत्य की भंगिमया को प्रस्तुत कर रहा है। संगत-राश निकट ही बैठे हुए हैं।

---

2. स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी. शाह, चित्र फलक क्रमांक 1
3. सरवाइवल ऑफ दि हड़प्पा कल्चर—टी. जी. अर्मुथन, पृष्ठ 55।
4. हड़प्पा ग्रंथ 1, वत्स एम. एस., पृष्ठ 129-130, फलक 93।
5. वही, पृष्ठ 28, मार्शल—मोहन जोदड़ो एन्ड इन्डस वैली सिविलाइजेशन, ग्रंथ 1, फलक 12, आकृति 13. 14. 18, 19, 22।
6. निहाररंजन रे—मौर्य एन्ड शुंग आर्ट, चित्र फलक 28, काम्प्रिहेनसिव हिस्ट्री ऑफ इन्डिया—संपादक के. ए. नीलकंठशास्त्री, चित्र फलक 38, स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी शाह, चित्र फलक 1 क्रमांक 2, मौर्य साम्राज्य का इतिहास—सत्यकेतु विद्यालंकार, चित्र फलक 10, भारतीय कला को बिहार की देन—विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह, चित्र संख्या 30।
7. स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी. शाह, चित्र फलक 2, आकृति 5।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रिंस ऑफ वेल्सम्यूजियम बम्बई में जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ[8] की प्राचीन कांस्य प्रतिमा संग्रहीत है। यह कायोत्सर्गासन में है, उनका सर्पफणों का वितान एवं दक्षिण कर खंडित है। ओष्ठ लंबे एवं हृदय पर श्रीवत्स चिन्हांकित नहीं है, जो परवर्तीकाल में प्राप्त होता है। श्री यू. पी. शाह ने प्रतिमा का काल 100 ई. पू. के लगभग सिद्ध किया है।

शुंगकालीन कंकाली टीला (मथुरा) से जैन स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए हैं इसके साथ ही उसी काल के पूजा पट्ट भी उपलब्ध हुए है जिन्हें आयाग पट्ट भी कहा जाता था। यह प्रस्तर अलंकृत हैं तथा आठ माँगलिक चिन्हों से युक्त है। पूजा निमित्त अमोहिनी ने इसे प्रदान किया था। इस युग का एक प्रधान केन्द्र उड़ीसा में था। यहाँ की उदयगिरि पहाड़ियों पर जैन धर्म से सम्बन्धित गुहायें उत्कीर्ण हैं।

शुंग एवं कुषाण युग में मथुरा जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र था। यहाँ के कंकाली टीले के उत्खनन से बहुसंख्यक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ किसी समय मथुरा के दो स्तूपों में लगी हुई थीं। अर्हत नंधावर्त की एक प्रतिमा जिसका काल 89 ई. है, इस स्तूप के उत्खनन से प्राप्त हुई है।

यहाँ से उपलब्ध जैन मूर्तियाँ, बौद्ध मूर्तियों से इतना सादृश्य रखतीं हैं कि दोनों का विभेद करना कठिन हो जाता है। यदि श्रीवत्स पर ध्यान न दिया जाय तो ऊपरी अंगों की समानता के कारण जैन को बौद्ध एवं बौद्ध को जैन मूर्ति कहने में कोई आपत्ति नहीं होगी। कारण यह था कि कुषाण युग के प्रारम्भ में कला में धार्मिक कट्टरता नहीं थी।

कुषाण युग के अनेक कलात्मक उदाहरण मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई से उपलब्ध हुए हैं। यहाँ से प्राप्त एक आयागपट्ट[9] जिस पर महास्वस्तिक का चिन्ह बना है, के मध्य में छत्र के नीचेपद्मासन में तीर्थंकर मूर्ति है, उनके चारों ओर स्वस्तिक की चार भुजाएँ हैं। तीर्थंकर के मण्डल की चार दिशाओं में चार त्रिरत्न दिखाये गये हैं। कलात्मक दृष्टि से लखनऊ संग्रहालय में संरक्षित आयागपट्ट[10] (क्रमांक जे. 249) महत्वपूर्ण है। इसकी स्थापना सिंहनादिक ने अर्हत् पूजा के लिए की थी। मध्य में पद्मासन पर बैठी हुई तीर्थंकर मूर्ति है। पट्ट की बाह्य चौखट पर आठ मंगलिक चिन्ह हैं।

आयागपट्ट पर जो मांगलिक चिन्ह हैं उनकी स्थिति से मूर्ति को जैन प्रतिमा मानने में संदेह नहीं रह जाता ये चिन्ह हैं—स्वास्तिक, दर्पण, भस्मपात्र, वेंत की तिपाई (भद्रासन), दो मछलियाँ, पुष्पमाला एवं पुस्तक। कुषाण युग के अन्य आयागपट्ट पर जो मांगलिक खुदे हैं उनमें दर्पण तथा नंधावर्त का अभाव है। संभवतः कनिष्क के काल (प्रथम सदी ई.) तक अष्टमांगलिक चिन्हों की अंतिम सूची निश्चित न हो सकी थी।

विवेच्य युग में प्रधानतः तीर्थंकर की प्रतिमाएँ तैयार की गईं जो कायोत्सर्ग एवं आसन अवस्था में हैं। मथुरा के शिल्पयों के सम्मुख यक्ष की प्रतिमायें ही आदर्श थीं, अतः कायोत्सर्ग स्थिति में तीर्थंकर की विशालकाय नग्न मूर्तियाँ बनने लगीं। कंकाली टीले के उत्खनन से प्राप्त बहुसंख्यक नग्न तीर्थंकर की प्रतिमायें लखनऊ के संग्रहालय में हैं। तीर्थंकर प्रतिमाओं में

---

8. वही, आकृति 3।
9. भारतीय कला—वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 281-282, चित्र फलक 316।
10. वही. पृष्ठ 282-283, चित्र संख्या 318।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधोवस्त्र का समावेष कुषाणयुग के पश्चात किया गया। इस युग में तीर्थंकरों के विभिन्न प्रतीकों का परिज्ञान न हो सका था। विभिन्न तीर्थंकरों को पहचानने के लिए तीर्थंकरों की चौकियों पर अंकित लेखों में नाम का उल्लेख ही पर्याप्त था।

कुषाण युग में मथुरा कला में तीर्थंकरों के लांछन नहीं पाये जाते हैं, जिनसे कालांतर में उनकी पहचान की जाती थी। केवल आदिनाथ के कंधों पर खुले हुए केशों की लटें दिखाई गई है और सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्पफणों का आटोप है। तीर्थंकर मूर्तियों के वक्ष पर श्रीवत्स एवं मस्तक के पीछे तेजचक्र या प्रभामण्डल पाया जाता है। फणाटोप वाली मूर्तियों में प्रभामण्डल नहीं रहता। चौकी पर केवल चक्र ध्वज या जिनमूर्ति या सिंह का अंकन पाया जाता हैं।

भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से विख्यात गुप्तकाल में यद्यपि जैनधर्म अधिक लोकप्रिय नहीं था, परन्तु अनेक साक्ष्यों से इस काल में जैन धर्म पर प्रकाश पड़ता है। इस युग में कला प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी थी। जैन प्रतिमायें सुन्दरता एवं कलात्मक दृष्टि से उत्तम हैं। अधोवस्त्र तथा श्रीवत्स ये विशेषतायें गुप्तकाल में परिलक्षित होती हैं। जैन मूर्तियाँ बनावट की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। प्रतिमाओं में चक्र, चौकी के मध्य तैयार किए गये, जिसके दोनों पार्श्व में दो हिरण या बृषभ खोदे गए हैं। सिरे पर तीन (चक्र) रेखाओं का छत्र दिखलाया गया है जिसके दोनों ओर हरित स्थित हैं। गुप्तयुगीन जैन प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षिणी, मालावाही गँधर्व आदि देवतुल्य मूर्तियों को भी स्थान दिया गया था। उत्तर गुप्तकाल में जैन कला सम्बन्धी अनेक केन्द्र काम करने लगे। अतः स्थानीय प्रतिमाओं की संख्या पर्याप्त रूप से मिलती है। तांत्रिक भावना ने कला को प्रभावित किया। कलाकारों का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया, परन्तु शास्त्रीय नियमों से बद्ध होने के कारण जैन कलाकारों को स्वतंत्रता न रही। इस युग में 24 तीर्थंकरों से सम्बन्धित चौबीस यक्ष-यक्षिणी को भी कला में स्थान दिया गया।

प्राचीन भारत के महत्वपूर्ण नगर विदिशा के निकट दुर्जनपुर ग्राम से कुछ वर्ष पूर्व रामगुप्तकालीन तीन अभिलेख युक्त जैन प्रतिमायें प्राप्त हुई थी। इन प्रतिमाओं की प्राप्ति से भारतीय इतिहास में अर्द्धशती से चले आ रहे इस विवाद का निराकरण संभव हो सका कि रामगुप्त गुप्त शासक था या नहीं।[11]

उपर्युक्त तीनों प्रतिमाओं में से दो प्रतिमायें चन्द्रप्रभ एवं एक अर्हत पुष्पदंत की हैं। यद्यपि मूर्तियाँ कुछ नग्न हैं तथापि कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। चन्द्रप्रभ की प्रथम मूर्ति के दक्षिण कर्ण में एक कड़ा एवं वक्ष पर श्रीवत्स चिन्हांकित हैं। पदमासनस्थ इस प्रतिमा के पाठपीठ पर मध्य में चक्र एवं दोनों पार्श्व में सिंह उत्कीर्ण है। मूर्ति का शरीर गठीला है। मस्तक के पीछे आभामण्डल था जो नष्ट हो गया है। चन्द्रप्रभ की द्वितीय प्रतिमा का मुख भाग पूर्णरूपेण खंडित है। पीछे तेजोमण्डल जिसका अर्धभाग ही शेष है। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित यह प्रतिमा भी पद्मासनस्थ है। पादपीठ के मध्य चक्र उत्कीर्ण हैं। दोनों पार्श्व पर चामरधारी हैं। तृतीय प्रतिमा अर्हत पुष्पदंत की है जो उपरिवर्णित प्रतिमा के ही सदृश्य है।

बक्सर के निकट चौसा (बिहार) से उपलब्ध कुछ कांस्य प्रतिमायें पटना के संग्रहालय में है। इन

11. विदिशा से प्राप्त जैन प्रतिमायें एवं रामगुप्त—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत मई 1974। विदिशा से प्राप्त प्रतिमायें एवं रामगुप्त—शिवकुमार नामदेव, मध्यप्रदेश संदेश, 28 अक्टूबर 1972। विदिशा से प्राप्त जैन प्रतिमायें एवं रामगुप्त की ऐतिहासिकता—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अप्रैल 1974।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाओं में से कुछ पर गंधार कला का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता हैं। यहां से उपलब्ध ऋषभनाथ की एक स्थानक प्रतिमा महत्वपूर्ण है। प्रतिमा का प्रभा मण्डल एवं शरीर गठन कला की दृष्टि से सुन्दर नहीं है। ओष्ठ मोटे प्रतीत होते हैं।[12]

राजगिरि की वैभार पहाड़ी पर एक खंडित देवालय के आले में एक प्रतिमा[13] पद्मासनस्थ ध्यानावस्थित है, प्रतिमा के मूर्तितत्व पर मध्य में एक युवा राजकुमार अंकित है जिनके दोनों पार्श्व में पैरों के निकट शंख हैं। प्रभामण्डल से युक्त इस प्रतिमा को कुछ विद्वानों ने नेमिनाथ को माना था, परन्तु वास्तव में यह प्रतिमा चक्र-पुरुष की है जो गुप्तयुगीन विचार धारा है। इस प्रतिमा के दोनों ओर दो जिन पदमासन में बैठे हैं। मस्तक प्रभामण्डल से सुशोभित हैं। अन्य आलों में भी तीर्थंकर प्रतिमायें हैं। शैली की दृष्टि से ये ई. चौथी सदी की ज्ञात होती है।

गुप्तयुगीन बेसनगर[14] (ग्वालियर संग्रहालय) से प्राप्त एक प्रतिमा के प्रभामण्डल के दोनों ओर उड़ते हुए मालाधारी अंकित हैं। प्रभामण्डल कुषाण शैली का है। विवेच्य युगीन मथुरा संग्रहालय की दो प्रतिमायें[15] शैली की दृष्टि से बनारस स्कूल के शिल्प की तरह हैं। सारनाथ से प्राप्त अजित नाथ की प्रतिमा का डॉ. साहनी ने गुप्त संवत् 61 माना है, यह काशी संग्रहालय में है। गुप्त नरेश कुमारगुप्त प्रथम के काल में निर्मित महावीर की एक प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में है। यह उत्थित पद्मासन में है।[16]

सीरा पहाड़ की जैन गुफायें तथा उनमें उत्कीर्ण मनोहर तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण इसी काल में हुआ। यहां से प्राप्त पार्श्वनाथ की मूर्ति सप्तफणों से युक्त पद्मासनरूढ़ है। भारत कला भवन काशी में संरक्षित राजघाट से प्राप्त धरणेन्द्र एवं पद्मावती सहित पार्श्वनाथ की प्रतिमा कला की दृष्टि से सुन्दर है।

वर्धमान महावीर को दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व जीवंत स्वामी के नाम से जाना जाता था। जीवंत स्वामी की गुप्तयुगीन दो प्रतिमायें बड़ौदा संग्रहालय[17] में सुरक्षित हैं। राजकीय परिधान में होने से उनकी पहचान सरलता से हो जाती है। अकोठा[18] से प्राप्त प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की एक कांस्य प्रतिमा कला की दृष्टि से सुन्दर है। प्रतिमा नग्न है एवं उसके मुर्तितल का पता नहीं है। प्रतिमा के अर्ध निमीलित नेत्र योग की ध्यानमुद्रा की ओर संकेत करते हैं। प्रतिमा का काल 450 ई. ज्ञात होता है।

छठवीं सदी के तृतीय चरण में पाण्डुवंशियों ने शरभपुरीय राजवँस को समाप्त कर दक्षिण कोशल को अपने अधिकार में कर श्रीपुर (सिरपुर, रायपुर जिला) को अपनी राजधानी बनाया। इस काल की पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा[19] सिरपुर से उपलब्ध हुई। ध्यानावस्था में

12. स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी. शाह, चित्र फलक 6, क्रमांक 17।
13. वही, आकृति 18।
14. वही, चित्र फलक 10, आकृति क्रमांक 24।
15. वही, चित्र फलक 11, आकृति क्रमांक 25-26।
16. इम्पीरियल गुप्त, आर. डी. बनर्जी, फलक 28।
17. अकोठा ब्रोन्ज—यू. पी. शाह, पृ. 26-28।
18. स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी. शाह, फलक 8, आकृति 19।
19. महत घासीराम स्मारक संग्रहालय रायपुर का सूची पत्र भाग 2, चित्र फलक 3 क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मासनरूढ़ इस प्रतिमा के केश घुंघराले एवं उष्णीष-बद्ध हैं, कर्ण की लौंडी लम्बी एवं हृदय पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। उनका लांछन नाग तकिया के रूप कुण्डली मारे बैठा है जिसके सातों फण उनके ऊपर छत्र की भांति तने हुए हैं।

उत्तरगुप्तकाल में कला के अनेक केन्द्र थे। कला तांत्रिक भावना से ओत-प्रोत थी। यद्यपि इस काल में कलाकारों का क्षेत्र विस्तृत हो गया था परन्तु वे प्रतिमा निर्माण में स्वतंत्र नहीं थे अपितु अपनी रचनाओं को शास्त्रीय नियमों के आधार पर ही रूप प्रदत्त करते थे। बंधन के फलस्वरूप मध्ययुगीन जैन कला निष्प्राण सी हो गई थी। इस काल की एक प्रमुख विशेषता जो हमें परिलक्षित होती है, वह है—कला में चौबीस तीर्थंकरों की यक्ष-यक्षिणी को स्थान प्रदान किया जाना। मध्य कालीन जैन प्रतिमाओं में चौकी पर आठ ग्रहों की आकृति का अंकन है जो हिन्दुओं के नव-ग्रहों का ही अनुकरण है।

मध्यकाल में मध्यप्रदेश में जैन धर्म की प्रतिमायें बहुलता से उपलब्ध होती हैं। मध्यप्रदेश के यशस्वी राज-वंश, कलचुरि, परमारों एवं चंदेल नरेशों के काल में उनकी धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप जैन धर्म भी इस भू भाग में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। भारतीय जैन कला में मध्यप्रदेश का योगदान महत्वपूर्ण है। अखिल भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ मध्यप्रदेश की अपनी विशेषताओं को भी यहाँ की कला ने उचित स्थान दिया।

कलचुरि कालीन तीर्थंकर प्रतिमायें आसन एव स्थानक मुद्रा में प्राप्त हुई है। कुछ संयुक्त प्रतिमाये भी उपलब्ध हुई हैं। तीर्थंकरों में सर्वाधिक प्रतिमाये तीर्थंकर ऋषमदेव की हैं।

कलचुरि युगीन भगवान ऋषभनाथ की सर्वाधिक प्रतिमायें कारीतलाई[20] से उपलब्ध हुई हैं। ये श्वेत बलुआ पाषाण से निर्मित हैं। सम्प्रति ये सभी प्रतिमाये रायपुर संग्रहालय में संरक्षित हैं। कारीतलाई के अतिरिक्त तेवर (जबलपुर), मल्लार एवं रतनपुर (बिलासपुर) आदि से भी आदिनाथ की प्रतिमाये उपलब्ध हुई हैं। तेवर से उपलब्ध, सम्प्रति जबलपुर के हनुमानताल जैन मंदिर में संरक्षित 7 फुट 4 इंच ऊंची ऋषभनाथ की प्रतिमा अतिकलापूर्ण एवं प्रभावोत्पादक हैं। प्रतिमा के अंग प्रत्यंग सुन्दर एवं सुडौल है मस्तक पर घुँघराले केश आकर्षक हैं। उभय स्कंध पर केश गुच्छ लटक रहे हैं।

द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की आसन मुद्रा में दो एवं चन्द्रप्रभ, शांतिनाथ, नेमिनाथ की एक-एक मूर्ति प्राप्त हुई है। तीर्थंकर शांतिनाथ की एक आसन एव दो स्थानक मुद्रा में प्राप्त प्रतिमायें विशेष उल्लेखनीय हैं।[21] बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा धुबेला के संग्रहालय[22] में संरक्षित हैं। विवेच्य युगीन पार्श्वनाथ की प्रतिमायें सिंहपुर (शहडोल), पेन्ड्रा (बिलासपुर) कारीतलाई (जबलपुर) आदि से उपलब्ध हुई हैं। महावीर की आसन प्रतिमाओं में कारीतलाई से उपलब्ध प्रतिमा महत्वपूर्ण है। महावीर की श्याम

---

20. कारीतलाई की अद्वितीय भगवान ऋषभनाथ की प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत, अक्टूबर-दिसम्बर 1973।
21. कलिचुरी कालीन भगवान शांतिनाथ की प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अगस्त 1972।
22. धुबेला संग्रहाल्य की जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण—जून 1974।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलुआ पाषाण निर्मित कायोत्सर्गासन की एक प्रतिमा जबलपुर से उपलब्ध हुई थी जो सम्प्रति फिल्डेलफिया म्यूजियम आफ आर्ट में संग्रहीत है।[23] मूर्ति में अंकित सिंह के कारण यह महावीर की ज्ञात होती है।

विवेच्य आसन एवं स्थानक प्रतिमाओं के अतिरिक्त तीर्थंकरों की द्विमूर्तिकायें भी प्राप्त हुई हैं। ये भी स्थानक एवं आसन मुद्रा में हैं। कारीतलाई से प्राप्त द्विमूर्तिका प्रतिमायें रायपुर संग्रहालय में संरक्षित हैं।[24]

कलचुरियुगीन पार्श्वनाथ एवं नेमिनाथ की एक मूर्तिका सम्प्रति फिल्डेलफिया[25] म्यूजियम ऑफ आर्ट में संरक्षित है। कृष्ण बादामी प्रस्तर से निर्मित दसवीं सदी की इस द्विमूर्तिका में तीर्थंकर एक वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्गासन में है।

विवेच्ययुगीन जैन शासन[26] देवियों की मूर्तियाँ बहुतायत से प्राप्त हुई हैं। ये स्थानक एवं आसन दोनों तरह की है। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कलचुरि नरेशों[27] के काल में निर्मित अधिकांश प्रतिमायें दसवीं एवं बारहवीं सदी के मध्य निर्मित हुई थीं। मूर्तियाँ शास्त्रीय नियमों पर आधारित हैं। उस मूर्ति कला पर गुप्तकालीन मूर्तिकला का प्रभाव अवश्य पड़ा है फिर भी कलचुरि कालीन जैन प्रतिमाओं में कुछ रूढ़ियों का दृढ़ता पूर्वक पालन किया गया है।[28]

मध्यप्रदेश के विश्व प्रसिद्ध कला तीर्थ खजुराहो[29] में चन्देल नरेशों के काल में निर्मित नागर शैली के देवालय वास्तु वैशिष्ट्य एवं मूर्ति संपदा के कारण गौरवशाली है। यहाँ के जैन मंदिरों में जिन मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं और प्रवेश द्वार तथा रथिकाओं में विविध जैन देवियाँ। देवालयों के ललाट बिंब में चक्रेश्वरी यक्षी प्रदर्शित है एवं द्वार शाखाओं तथा रथिकाओं में अधिकांशत: अन्य जैन देवी देवता जैसे जिनों, विद्याधरों शासन देवताओं आदि की मूर्तियाँ हैं। वर्धमान की माँ ने जो सोलह स्वप्न देखे थे वे सब जैन देवालयों (पार्श्वनाथ को छोड़कर) के प्रवेश द्वार पर प्रदर्शित हैं। जैन मूर्तियाँ प्रायः तीर्थंकरों की हैं, जिनमें से वृषम, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, पद्मप्रभु, शाँतिनाथ एवं महावीर की मूर्तियाँ अधिक हैं।[30]

बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ अहार (टीकमगढ से 12 मील के प्राचीन देवालय में बाईस फुट के आकार की एक विशाल शिला है, इसी शिला पर अठारह फुट ऊँची भगवान शाँतिनाथ की एक कलापूर्ण मूर्ति सुशोभित है। इसे परमार्दिदेव चन्देल के काल में संवत् 1237 वि. में स्थापित किया गया था। बायीं ओर की बारह फुट की कुन्थुनाथ की मूर्ति भी सुन्दर है।

प्रयाग नगरसभा के संग्रहालय में खजुराहो[31] से उपलब्ध 10 वीं सदी की निर्मित पार्श्वनाथ की एक

23. स्टैला केमरिच—इन्डियन स्कल्पचर इन द फिल्डेलफिया म्यूजियम आफ आर्ट, पृष्ठ 82।
24. कारीतलाई की द्विमूर्तिका जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, सितम्बर 1975।
25. स्टैला क्रेमरिच—इन्डियन स्कल्पचर इन द फिल्डेलफिया म्यूजियम ऑफ आर्ट, पृ. 83।
26. कलचुरी कला में जैन शासन देवियों की मूर्तियां—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अगस्त 1974।
27. भारतीय जैन शिल्प कला को कलचुरि नरेशों की देन, शिवकुमार नामदेव, जैन प्रचारक, सितम्बर-अक्टूबर 1974।
28. भारतीय जैन कला को कलचुरि नरेशों का योगदान—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत—अगस्त 1974।
29. जैन कला तीर्थ-खजुराहों—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, अक्टूबर 1974।
30. खजुराहो की अद्वितीय जैन प्रतिमायें—शिवकुमार नामदेव, अनेकांत, फरवरी 1974।
31. खण्डहरों का वैभव—मुनि कांतिसागर पृ. 246-47।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलक्षण प्रतिमा संग्रहीत है। जिनके समीकरण के विषय में विद्वानों में मतैक्य है।

प्रतिहारों के पतन के पश्चात् मालवा में परमारों का राज्य स्थापित हुआ। इनके समय में जैन धर्म मालवा में अपने स्वर्णिम काल में था। भोजपुर से तीन मील आशापुरी नामक गाँव में शाँतिनाथ की परमार-कालीन प्रतिमा है। निमाड़ के मैदान में ऊन नामक के अवशेषों में लगभग एक दर्जन मन्दिर परमार राजाओं की स्थापत्य कला के उत्तम नमूने हैं। केन्द्रीय संग्रहालय इंदौर में परमार युगीन तीर्थंकरों की लेखयुक्त प्रतिमायें हैं।

पूर्व मध्य एवं मध्यकाल में जैन कलाकृतियाँ मध्यप्रदेश[32] के विभिन्न भूभागों से उपलब्ध होती हैं। मुरैना के सिहोनिया, पढ़ावली, गुना के तिराही एवं इन्दौर, पन्ना के दूँडा ग्राम, सिवनी में घंसौर एवं बरहटा, ग्वालियर के निकट मुरार, नागौद एवं जसो के अतिरिक्त दक्षिण कौशल के अनेकों स्थल जैन शिल्प कला से भरे पड़े हैं। मालव भूमि के साँची, धार, दशपुर, बदनावर, कानवन, बड़नगर, उज्जैन,[33] जावरा, बड़वानी आदि ऐसे कला केन्द्र हैं, यहाँ ब्राह्मण धर्म की प्रतिमाओं के साथ-साथ जैन मूर्तियाँ संरक्षित हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अति प्राच्यकाल से ही मध्यप्रदेश के विभिन्न भूभागों में जैन धर्म का आस्तित्व पूर्व मौर्यकाल से लेकर आद्यावधि निरंतर दृष्टिगोचर होता है।[34]

उत्तरप्रदेश में मध्यकालीन जैन प्रतिमायें बहुलता से प्राप्त हुई है जो इस प्रदेश के विभिन्न संग्रहालयों में देवालयों एवं यत्र-तत्र अवस्थित है। उत्तर प्रदेश के अधिकांश स्थलों से उपलब्ध जैन प्रतिमायें प्रयाग संग्रहालय में हैं,[35] यहाँ संग्रहीत ऋषभनाथ की चुनार पाषाण से निर्मित प्रतिमा उल्लेखनीय है। संग्रहालय में स्थित हल्के हरे रंग के आकर्षक प्रस्तर पर चतुर्विंशति-पट्ट उत्कीर्ण है। प्रतिमाओं का अंग विन्यास स्वाभाविक है, यह 13वीं सदी की कृति है।

नगर सभा संग्रहालय के उद्यान कूप के निकट एक छोटे से छप्पर में अम्बिका देवी उत्कीर्ण हैं। इसका परिकर न केवल जैन शिल्प स्थापत्य कला का समुज्जवल प्रतीक है, अपितु भारतीय शिल्प स्थापत्य कला में जैनों की मौलिक देन है। प्रतिमा का काल 12-13वीं सदी के मध्य का ज्ञात होता है।[36] उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्थलों से जैन यक्षी पदमावती की प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं।[37]

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के खुरवन्दोग्राम में भगवान महावीर की प्राचीन मूर्ति स्थापित है। झाँसी जिले के चँदेरी में भगवान महावीर की लावण्यमयी प्रतिमा आभा से परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त

32. मध्यप्रदेश में जैन धर्म एवं कला—शिवकुमार नामदेव, सन्मति संदेश, अप्रैल-मई 1975।
33. जैन धर्म एवं उज्जयिनी—शिवकुमार नामदेव, सन्मति वाणी, जुलाई 1975।
34. भारतीय जैन कला को मध्यप्रदेश की देन—शिवकुमार नामदेव, सन्मति वाणी, मई-जून 1975।
35. खण्डहरों का वैभव—मुनि कांति सागर, पृ. 232 एवं आगे।
36. खण्डहरों का वैभव—मुनि कांतिसागर पृष्ठ 250-253।
37. उत्तर भारत में जैन यक्षी पदमावती का प्रतिमा निरूपण—मारुतिनंदन प्रसाद तिवारी, अनेकांत अगस्त 1974।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की प्रतिमायें इलाहाबाद में स्थित पफोसा, देवगढ़ के मन्दिर क्रमांक 21 आदि में सुरक्षित हैं।[38]

श्रावस्ती के पश्चिमी भाग में जैन अवशेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यहीं पर भगवान संभवनाथ का जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है। यहाँ पर अनेकों प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं।[39] जिला गोंडा के महंत से आदिनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध हुई है। पदमासन के नीचे दो सिंह और वृषभ हैं। आसन के नीचे कमल है जिस पर आदिनाथ पदमासन पर बैठे हैं। हृदय पर धर्म चक्र बना है। मस्तक के पीछे प्रभामण्डल एवं तीन छत्रों वाला छत्र है। सभी ओर अनेक तीर्थंकर ध्यान मग्न हैं।[40] बरेली जिले के अहिच्छत्र से अनेकों जैन प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। यहां से उपलब्ध पार्श्वनाथ की एक सातिशय प्रतिमा हरित पन्ना की पद्मासन मुद्रा में विराजमान है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य एवं प्रभावक है। मूर्ति के नीचे सिंहासन के पीठ के सामने वाले भाग में 24 तीर्थंकर प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं।[41]

कर्नाटक में जैन धर्म का अस्तित्व प्रथम सदी ई. पू. से 11वीं सदी ई. तक ज्ञात होता है। होयशल वंशी नरेश इस मत के प्रबल समर्थक थे। पूर्वकालीन जैन देवालय एवं गुफायें ऐहोल, बादामी एवं पट्टडकल आदि में है। इनके अतिरिक्त जैन देवालय लकुण्डी (लोकिगुण्डी), बंकपुर, बेलगाम, हल्शी, बल्लिगवे, जलगुण्ड आदि में हैं। ये देवालय विभिन्न देव प्रतिमाओं से विभूषित हैं। इस काल की वृहताकार प्रतिमायें श्रावणबेलगोल, कार्कल एवं वेनूर में स्थापित है।

कर्नाटक में पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षी रही हैं।[42] यद्यपि पद्मावती का संप्रदाय काफी प्राचीन रहा है: परन्तु 10वीं शती के बाद के अभिलेखीय साक्ष्यों में निरंतर पद्मावती का उल्लेख प्राप्त होता है। कन्नड क्षेत्र में प्राप्त पार्श्वनाथ मूर्ति (10वीं-11वीं सदी) में एक सर्पफण से युक्त पद्मावती की दो भुजाओं में पदम एवं अभय प्रदर्शित है।[43] कन्नड शोध संस्थान संग्रहालय की पार्श्व मूर्ति में चतुर्भुज पद्मावती, पदम, पाश, गदा या अंकुश एवं फल धारण करती हैं।[44] इसी संग्रहालय में चतुर्भुजी पद्मावती की ललितासन मुद्रा में दो स्वतन्त्र मूर्तियाँ हैं। बादामी की गुफा पाँच, के समक्ष की दीवार पर ललित मुद्रा में आसीन चतुर्भुजी यक्षी आमूर्तित है। आसन के नीचे वाहन सम्भवतः हंस है। सर्पफणों से विहीन यक्षी के करों में अभय, अंकुश पाश एवं फल प्रदर्शित हैं।[45] पद्मावती की तीन चतुर्भुजी कर्नाटक से प्राप्त प्रतिमायें प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम बम्बई में संरक्षित है।[46]

---

38. भारतीय पुरातत्व एवं कला में भगवान महावीर—शिवकुमार नामदेव, श्रमण, नवम्बर-दिसम्बर 1974।
39. जैन तीर्थ श्रावस्ती—पं. बलभद्र जैन—अनेकांत, जुलाई-अगस्त 1973।
40. भारतीय प्रतीक विद्या—जनार्दन मिश्र, चित्र संख्या 79।
41. अहिच्छत्र—श्री बलिभद्र, जैन, अनेकांत, अक्टूबर-दिसम्बर 1973।
42. जैनिज्म इन साउथ इन्डिया—देसाई, पी. वी. पृष्ठ 163।
43. नोट्स ऑन टू जैन मेण्टल इमेजेज—हाडवे, डब्ल्यू एस, रूपम, अंक 17, जनवरी 1924, पृ. 48।
44. गाइड टू द कन्नड रिसर्च इन्सटीट्यूट म्युझियम धारवाड़—1958 पृ. 19।
45. जैन यक्षाज ऐण्ड यक्षिणीज—सांकलिया, कलेटिन डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, खण्ड 9, 1940 पृष्ठ 169।
46. वही पृष्ठ 158-159।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्नाटक में गोम्मट की अनेक मूर्तियाँ हैं। चालुक्यों के काल में निर्मित ई. सन् 650 की गोम्मट की एक प्रतिमा बीजापुर जिले के बादामी में है। तलकाडु के गंग राजाओं के शासन काल में गंग राजा रायमल्ल सत्यवाक्य के सेनापति व मन्त्री चामुण्डराज द्वारा बेलगोल में ई. सन् 982 में स्थापित विश्व प्रसिद्ध गोम्मट मूर्ति है। गोम्मट गिरी में भी 14 फुट ऊँची एक गोम्मट मूर्ति है। इसके अतिरिक्त होसकोटे हल्ली, कार्कल एवं वेणूर में पैंतीस फुट ऊँची प्रतिमा है।[47]

बंगाल[48] में जैन धर्म का आस्तित्व प्राचीन काल से ही रहा है। यहाँ के धरापात के एक प्रतिमा विहीन देवालय के तीनों ओर के ताकों में विशाल प्रतिमायें विराजित थीं जिनमें पृष्ठ भाग वाली में ऋषभदेव, वामपक्ष से प्रदक्षिणा करते प्रथम शांतिनाथ और अन्त में तीसरे आले में जैनेतर मूर्तियाँ हैं। ये सम्भवतः 8वीं सदी की हैं। बहुलारा नामक स्थल के एक मन्दिर के सामने वेदी पर तीन प्रतिमायें हैं। मध्यवर्ती प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की हैं जो अष्ट प्रतिहार्य और धरणेन्द्र-पद्मावती से युक्त है। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के निम्न भाग में धरणेन्द्र-पद्मावती है और मूर्ति निर्माणक दम्पत्ति भी है। बाँकुड़ा जिले के ही हाडमासरा ग्राम के जंगल में एक पार्श्वनाथ प्रतिमा है। अंबिकानगर में स्थित अंबिका देवी के मंदिर के पृष्ठ भाग में अवस्थित एक जैन मदिर में सपरिकर ऋषभनाथ की प्रतिमा है। पाकबेडरा में अनेकों प्रतिमायें संरक्षित हैं। इनमें 7 फुट ऊँची खड़गासन स्थित श्री पद्मप्रभु स्वामी की प्रतिमा है। इसी स्थल के एक मदिर में ऋषभनाथ की पांच प्रतिमायें हैं। जिनमें दो चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमा परिसर युक्त हैं।

उड़ीसा की खण्डगिरि की नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (8वीं-9वीं सदी) के सामूहिक अंकनों में भी पार्श्वनाथ के साथ पदमावती आमूर्तित है। नवमुनि गुफाओं में पार्श्व के साथ उत्कीर्णित द्विभुजी यक्षी ललितमुद्रा में पदमासन पर विराजमान है।[49] बारभुजी गुफा में पार्श्व के साथ पांच सर्पफणों से मंडित अष्टभुजी पद्मावती है। पुरी जिले से उपलब्ध आदिनाथ की एक स्थानक प्रतिमा इंडियन म्यूजियम कलकत्ता की निधि है।[50]

तामिलनाडु से भी जैन धर्म से सम्बंधित अनेकों प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। कलगुमलाई से चतुर्भुजी पदमावती को ललित मुद्रा में (10 वीं-11 वीं सदी) मूर्ति प्राप्त हुई है। शीर्ष भाग में सर्पफण से मंडित यक्षी, फल, सर्प, अंकुश एवं पाश धारण करती हैं।[51] मदुरा तामिलनाडु का महत्वपूर्ण नगर है। यहां पर जैन संस्कृति की गौरव गरिमा में अभिवृद्धि करने वाली कलात्मक सामग्री का प्रचुर परिमाण विद्यमान हैं।

बिहार प्रदेश से उपलब्ध अनेकों प्रतिमायें पटना संग्रहालय में संरक्षित हैं। संग्रहालय में चौसा के शाहाबाद से प्राप्त जैन धातु मूर्तियां सुरक्षित हैं। ऋषभनाथ की प्रतिमा कायोत्सर्ग स्थिति में कंधे पर बिखरे बाल तथा लंबी भुजाओं के साथ बनाई गई थीं।

---

47. कर्नाटक की गोम्मट मूर्तियां—आचार्य पं. के. भुजबल शास्त्री, अनेकांत, अगस्त 1972।
48. बंगाल के जैन पुरातत्व की शोध में पांच दिन—भंवरलाल नाहटा, अनेकांत, जुलाई-अगस्त 1973।
49 शासन देवीज इन द खण्डगिरि केव्हस—मित्रा देवल, जर्नल एशियाटिक सोसायटी (बंगाल), खण्ड I, अंक 2, 1959, पृ.-139।
50. स्टेडीज इन जैन आर्ट—यू. पी. शाह, आकृति 36।
51. जैनिज्म इन साउथ इन्डिया—पी. बी. देसाई, पृ. 65।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा कायोत्सर्ग तथा पीछे सर्पफण के साथ है। यहां से उपलब्ध धातु प्रतिमायें कमलासन पर खड़ी हैं। राजग्रह निवासी कन्हैयालालजी श्रीमाल के संग्रह में एक प्रस्तर पट्टिका है। इसके निम्न भाग में महावीर की प्रतिमा है। ऊपर के एक भाग में भाव शिल्प है जिसका सम्बन्ध महावीर से ज्ञात होता है।[52]

नालंदा से उपलब्ध एवं नालंदा संग्रहालय में संरक्षित ललित मुद्रा में पद्म पर विराजमान चतुर्भुजी देवी के मस्तक पर पांच सर्पफण प्रदर्शित हैं। देवी की भुजाओं में फल, खड्ग, परशु एवं चिनमुद्रा में पदमासन का स्पर्श करती देवी की भुजा में पद्म नालिका भी स्थित है।[53] केवल सर्पफण से ही इसका समीकरण पदमावती से करना उचित नहीं है।

राजस्थान के ओसिया[54] नामक स्थल में महावीर का एक प्राचीन मंदिर है। यह 9 वीं सदी की रचना है। मंदिर में विराजमान महावीर की एक विशालकाय मूर्ति है। इसी स्थल से पार्श्वनाथ की एक धातु प्रतिमा उपलब्ध हुई थी जो सम्प्रति कलकत्ता के एक मंदिर में है। इस देवालय के मुखमण्डल के ऊपरी छज्जे पर पद्मावती की प्रतिमा उत्कीर्ण है। कुक्कुट-सर्प पर विराजमान द्विभुज यक्षी की दाहिनी भुजा में सर्प और बायीं में फल स्थित है। स्पष्ट है कि पद्मावती के साथ 8वीं सदी में ही वाहन कुक्कुट-सर्प एवं भुजा में सर्प को सम्बद्ध किया जा चुका था।

ग्यारवीं सदी की एक अष्टभुज पद्मावती की प्रतिमा राजस्थान के अलवर जिले में स्थित झालरपाट्टन के जैन मंदिर की दक्षिणी वेदिका बंध पर उत्कीर्ण है। ललित मुद्रा में भद्रासन पर विराजमान यक्षी की भुजाओं में वरद, वज्र, पद्मकलिका, कृपाण, खेटक, घण्ट एवं फल प्रदर्शित है।

विमलशाह गुजरात के प्रतापी नरेश भीमदेव के मंत्री थे। इन्होंने ग्यारहवीं सदी में विमलवसही का निर्माण कराया था। इसके गूढ़मण्डप के दक्षिणी द्वार पर चतुर्भुजी पद्मावती की आकृति उत्कीर्ण है। विमलवसही की देवकुलिका 49 के मण्डप वितान पर उत्कीर्ण षोडशभुजी देवी की सम्भावित पहचान महाविद्या वैरोट्या एवं यक्षी पद्मावती दोनों ही से की जा सकती है। सर्प के सप्तफणों का मण्डन जहां देवी पद्मावती की पहचान का समीकरण करता है, वहीं कुक्कुट सर्प के स्थान पर वाहन के रूप में नाग का चित्रण एवं भुजाओं में सर्प का प्रदर्शन महाविद्या वैरोट्या से पहचान का आधार प्रस्तुत करता है।

जयपुर के निकट चांदनगांव एक अतिशय क्षेत्र है। "यहां महावीर जी के विशाल मंदिर में महावीर की भव्य सुन्दर मूर्ति है। जोधपुर के निकट गाँधाणी तीर्थ[55] में भगवान ऋषभदेव की धातु मूर्ति 937 ई. की है। बूंदी[56] से 20 वर्ष पहले कुछ प्रतिमायें प्राप्त हुई थीं। उनमें से तीन अहिच्छत्र ले जाकर स्थापित की गई हैं। तीनों का रंग हल्का कत्थई है, एवं तीनों शिलापट्ट पर उत्कीर्ण हैं। एक पर पार्श्वनाथ उत्कीर्ण हैं।

चौहान जाति की एक उप-शाखा देवड़ा के शासकों की भूतपूर्व राजधानी सिरोही की भौगोलिक सीमाओं में स्थित देलवाडा के हिन्दू एवं जैन मंदिर प्रसिद्ध हैं।

---

52. खण्डहरों का वैभव—मुनि कांतिसागर, पृ. 126।
53. आर्कियालाजीकल सर्वे आफ इन्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट 1930-34, भाग 2, फलक 68, चित्र बी।
54. ओसिया का प्राचीन महावीर मन्दिर—अगरचन्द जैन नाहटा, अनेकांत, मई 1974।
55. खण्डहरों का वैभव—मुनि कांतिसागर—पृ. 71।
56. अहिच्छत्र—श्री बलिभद्र जैन, अनेकांत, अक्टूबर-दिसम्बर 1973।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिलवाड़ा के पांच जैन मन्दिर श्वेत सगमरमर से निर्मित हैं। विमलशाह का मन्दिर जिसका निर्माण 1030 ई. में तथा वस्तुपाल एवं तेजपाल के मन्दिर 1231 ई. में बनवाये गये थे। विमलशाह के मन्दिर में जैन तीर्थंकर आदिनाथ और अन्य दो मंदिरों में नेमिनाथ जी की मूर्तियाँ हैं। सादड़ी से 14 मील दूर अरावली की पहाड़ी टेकड़ी में राणापुर (राणापुर) के मंदिरों में नेमीनाथ, आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ के मन्दिर प्रमुख हैं। यहां के आदिनाथ मन्दिर में ऋषभदेब की विशाल पद्मासन मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ एवं आकर्षक है कुल मिलाकर वेदियों में 425 मूर्तियां हैं। इसी प्रकार नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ मन्दिर में अनेकों जैन प्रतिमायें हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश में भी जैन प्रतिमायें बहुसंख्या में उपलब्ध होती हैं। दिगंबर केन्द्र एलोरा (9वीं सदी) की गुफायें तीर्थंकर प्रतिमाओं से भरी पड़ी हैं। छोटा कैलास (गुहा संख्या 30) में ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ तथा महाबीर की बैठी पाषाण मूर्तियां पदमासन एवं ध्यान मुद्रा में है। प्रत्येक तीर्थंकर के पार्श्व में चांवर धारण किये यक्ष तथा गंधर्व हैं। ऋषभनाथ के कंधे पर केश बिखरे हैं। पार्श्वनाथ के सिर पर सात सर्पफण हैं। सिहासन पर बैठे महावीर की प्रतिमा के ऊपरी भाग में छत्र दीख पड़ता है। एलोरा की 30 से 34 क्रमांक तक की गुफायें जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। इन्द्रसभा गुफा (संख्या 33) की उत्तरीय दीवार पर पार्श्वनाथ, दक्षिण पार्श्व में गोम्मटेश्वर-बाहुवलि के अतिरिक्त महावीर एवं अन्य तीर्थंकर मूर्तियां हैं। जगन्नाथ गुफा के बराण्डा में पार्श्वनाथ तथा महावीर के अतिरिक्त एक पुस्तर पर चौबीस तीर्थंकरों की छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। एलौरा की एक गुफा में अंबिका की मानव कद प्रतिमा है।

अंकाई-तंकाई में जैनों की सात गुफायें हैं। ये छोटी होते हुए भी शिल्प कलापेक्षया अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तीसरी गफा के छोर पर इन्द्र और इन्द्राणी हैं। इसके अतिरिक्त शांतिनाथ, पार्श्वनाथ एवं गवाक्ष में जिन प्रतिमायें हैं। रचना शैली की दृष्टि से ये 13वीं सदी की ज्ञात होती हैं।

गुजरात जैन शिल्पकला की दृष्टि से समृद्ध राज्य है। गुजरात के चालुक्य राजाओं के काल में अनेक जेन मदिरों का निर्माण हुआ। गुजरात के बनासकांठा ज़िले में स्थित कुंमारिया [57] एक प्राचीन जैन तीर्थ है। यहां पांच श्वेताम्बरीय, श्वेत संगमरमर से निर्मित जैन मंदिर हैं। इनमें महावीर का मंदिर सबसे प्राचीन एवं भव्य है। मूलनायक के अतिरिक्त गूंटमंडप में परिकर युक्त दो अन्य कायोत्सर्गासन की प्रतिमायें हैं। कलापूर्ण कोरणीयुक्त रंग मडप के दूसरे भागों की छत में आबू के विमलवराही जैसे जैन चरित्रों के विभिन्न द्रश्य है। गढ़ मण्डप में दो विशाल कायोत्सर्ग मूर्तियाँ-शांतिनाथ एवं अजितनाथ की हैं। श्वेताम्बर परंपरा का निर्वाह करने वाली बारहवीं सदी की दो चतुर्भुज पदमावती की प्रतिमायें कुंमारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी देवकुलिका की वाह्य भिति पर उत्कीर्ण है। [58] गुजरात के अन्य मन्दिरों में शांतिनाथ, कुंभेश्वर, संभवनाथ आदि मुख्य हैं। गुजरात के बडनगर में चालुक्य नरेश मूलराज (642–997 ई.) के काल का आदिनाथ मन्बिर है। मन्दिर के देवकुलिकाओं में आदिनाथ की यक्षयक्षिणी अंकित हैं। यहीं पर चक्रेश्वरी की भी प्रतिमा है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय शिल्पकला के विकास में जैन शिल्पकला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की प्राचीन संस्कृति को जानने के लिये जैन शिल्पकला का अध्ययन आवश्यक है। भिन्न-भिन्न कालों और ढँगों पर बनी मूर्तियों से मूनिकला के विकास पर गहरा प्रकाश पड़ता है। ये इसके अतिरिक्त विभिन्न कालीन योगियों के आसन मुद्रा, केश और प्रतिहार्यों पर भी काफी प्रकाश डालती हैं। इन मूर्तियों के अध्ययन से भारतीय लोगों की वेशभूषा आदि का ज्ञान होता है।

□ □

57. कुंभारिया का महावीर मन्दिर—श्री हरींहरसिंह, श्रमण, नवम्बर-दिसम्बर 1974, कुंभारिया का कलापूर्ण महावीर मन्दिर—श्री अगरचन्द नाहटा, श्रमण अप्रैल 1974।

58. ऐ ब्रीफ सर्वे आफ द आइकनोग्राफिक डैटा एट कुंभारिया—नार्थ गुजरात, सम्बोधि, खण्ड 2, अक 1, अप्रैल 1973, पृ. 13।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org